

[2025] 1 एस.सी.आर. 764 : 2025 आईएनएससी 53

एच. गुरुस्वामी एवं अन्य

बनाम

कृष्णैया (अब दिवंगत) के कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा

(सिविल अपील क्रमांक 317/2025)

08 जनवरी 2025

[जे.बी. पारदीवाला एवं आर. महादेवन, न्यायमूर्तिगण]

विचारणीय मुद्दा

आदेश 9 नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत दायर आवेदन को खारिज करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.08.2014 को उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया, जिसे वर्तमान अपील में चुनौती दी गई थी; अपीलकर्ताओं ने प्रस्तुत किया कि वापसी के लिए आवेदन दाखिल करने में छह साल (लगभग 2200 दिन) की देरी हुई; और उच्च न्यायालय ने वापसी बुलाने के लिए दायर आवेदन को खारिज करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा बताए गए किसी भी कारण का उल्लेख किए बिना लगभग 2200 दिनों की देरी को माफ कर दिया।

शीर्ष टिप्पणियाँ

परिसीमा - परिसीमा के नियम यह देखने के लिए हैं कि पार्टियां टाल-मटोल की रणनीति का सहारा न लें बल्कि तुरंत अपना समाधान तलाशें - वे ठोस सार्वजनिक नीति के सिद्धांतों और समानता के सिद्धांतों पर आधारित हैं:

अभिनिर्धारित: बार-बार, सर्वोच्च न्यायालय ने जिला न्यायपालिका के साथ-साथ उच्च न्यायालयों को याद दिलाया है कि "उदार दृष्टिकोण", "न्याय उन्मुख दृष्टिकोण", "पर्याप्त न्याय" जैसी अवधारणाओं को परिसीमा के महत्वपूर्ण कानून को विफल करने या खारिज करने के लिए नियोजित नहीं किया जाना चाहिए - उच्च न्यायालय ने न्यायिक विवेक और प्रतिबंधों की पूर्ण अनुपस्थिति का प्रदर्शन किया, जिसे एक न्यायाधीश से पक्षकारों के बीच

मुकदमे का फैसला करते समय बनाए रखने की उम्मीद की जाती है - परिसीमा के नियम पक्षकारों के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं - उनका मतलब है यह देखने के लिए कि पक्ष टाल-मटोल की रणनीति का सहारा नहीं लेते हैं, बल्कि तुरंत अपना उपाय तलाशते हैं- देरी की लंबाई निश्चित रूप से एक प्रासंगिक मामला है, जिसे अदालत को यह विचार करते समय विचार करना चाहिए कि देरी को माफ किया जाना चाहिए या नहीं - यहां प्रतिवादियों के दृष्टिकोण की प्रकृति से, ऐसा प्रतीत होता है कि वे कार्यवाही शुरू करने के उद्देश्य से अपनी स्वयं की सीमा अवधि तय करना चाहते हैं, जिसके लिए कानून ने सीमा की अवधि निर्धारित की है - एक बार यह माना जाता है कि एक पक्ष ने मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार करने का अपना अधिकार खो दिया है। लंबे समय तक उसकी खुद की निष्क्रियता के कारण, इसे गैर-जानबूझकर की गई देरी नहीं माना जा सकता है और मामले की ऐसी परिस्थितियों में, उसे यह दलील देते हुए नहीं सुना जा सकता है कि तकनीकी विचारों के मुकाबले पर्याप्त न्याय को प्राथमिकता दी जानी चाहिए - देरी की माफी के लिए याचिका पर विचार करते समय, अदालत को मुख्य मामले के गुणों के साथ शुरू नहीं करना चाहिए - अदालत का कर्तव्य है कि वह पहले माफी मांगने वाले पक्ष द्वारा पेश किए गए स्पष्टीकरण की प्रामाणिकता का पता लगाए - यह केवल तभी होता है जब पर्याप्त कारण सौंपा गया हो वादी और दूसरे पक्ष का विरोध समान रूप से संतुलित है कि अदालत देरी को माफ करने के उद्देश्य से मामले की खूबियों को सहायता में ला सकती है - परिसीमा का प्रश्न केवल एक तकनीकी विचार नहीं है - परिसीमा के नियम ठोस सार्वजनिक नीति के सिद्धांतों और समानता के सिद्धांतों पर आधारित हैं - किसी भी अदालत को अनिश्चित काल के लिए वादी के सिर पर 'डेमोकल्स की तलवार' लटकाए नहीं रखना चाहिए - उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को खारिज कर दिया जाता है और विचारण न्यायालय का आदेश दिनांकित होता है 05.08.2014 विविध में उत्तीर्ण। 2006 की संख्या 223 को इसके द्वारा बहाल किया जाता है। [अनुच्छेद 13, 14, 15, 16, 17, 18]

अधिनियमों की सूची

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 9 नियम 13।

प्रमुख शब्दों की सूची

आदेश 9 नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत दायर आवेदन; वापस बुलाने के लिए आवेदन दाखिल करने में छह साल की देरी; देरी की माफी; सीमा के नियम; टालमटोल की रणनीति; सुदृढ़ सार्वजनिक नीति के सिद्धांत; समता के सिद्धांत।

मामले की उत्पत्ति

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 317/2025

एमएफए संख्या 7220/2014 में बैंगलुरु स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 30.01.2020 से।

अधिवक्तागण

आनंद संजय एम नुली, वरिष्ठ अधिवक्ता, सूरज कौशिक, शिवराज सिंह, अभिषेक सिंह (मैसर्स नुली और नुली के लिए), अधिवक्ता, अपीलकर्ताओं के लिए।

राजेश महाले, वरिष्ठ अधिवक्ता, परीक्षित मालिये, सुश्री अनुराधा भट्ट, हरीशा एस.आर., अधिवक्ता। प्रतिवादियों के लिए।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

आदेश

1. यह अपील कर्नाटक उच्च न्यायालय, बैंगलुरु द्वारा दिनांक 30.01.2020 को विविध प्रथम अपील संख्या 7220/2014 में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में, "सिविल प्रक्रिया संहिता") के आदेश 43 नियम 1 (घ) के तहत पारित निर्णय और आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसके द्वारा आदेश दिनांक 05.08.2014 को विविध अधिवक्ता संख्या 223/2006 में पारित किया गया। 14 अतिरिक्त नगत सिविल न्यायाधीश, बैंगलुरु की फाइल पर वाद संख्या 223/2006 को आदेश 9 नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया और इस तरह अपील की अनुमति दी गई।

2. इस अपील को उत्पत्ति देने वाले तथ्यों को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

क. वाद अनुसूची संपत्ति संख्या 1/11 बायरसांद्रा, बैंगलुरु, कर्नाटक में स्थित है, जिसकी लंबाई 45 गज पूर्व से पश्चिम और 55 गज उत्तर से दक्षिण है, इसे वर्ष 1916 में एक वेंकटप्पा द्वारा खरीदा गया था। इसके बाद, उक्त वेंकटप्पा ने वाद की संपत्ति का एक हिस्सा बेच दिया और शेष भाग 45 गज पूर्व से पश्चिम और 27.5 गज उत्तर से दक्षिण तक अपने पास रखा। एक पंजीकृत पारिवारिक विभाजन के माध्यम से, वाद अनुसूची संपत्ति को वेंकटप्पा और मुनिगा @ चिकोन् (वेंकटप्पा के भाई) के बीच विभाजित किया गया था, जिसमें वेंकटप्पा को 1/3 हिस्से के साथ 29 अंकन प्राप्त हुए थे और चिकोन् को 2/3 हिस्से के साथ घर के 10 अंकन प्राप्त हुए थे।

ख. वेंकटप्पा द्वारा अपने परिवार के सदस्यों के खिलाफ मूल वाद संख्या 615/1960 पर निषेधाज्ञा का मुकदमा दायर किया गया था, जिसे बाद में 14.06.1965 को वापस ले लिया गया।

ग. शुरुआत में एक सी.आर. नारायण रेड्डी ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ विशिष्ट निष्पादन के लिए एक मुकदमा दायर किया था, जो मूल वाद संख्या 33/1971 था। सिविल न्यायाधीश, सिविल स्टेशन, बंगलोर की अदालत के समक्ष बायरासंद्रा गांव में एक घर के साथ भूमि के संबंध में, जिसका निपटान दिनांक 30.08.1971 के फैसले और आदेश के तहत अपीलकर्ताओं को भुगतान की गई बयाना राशि वापस करने के निर्देश के साथ किया गया।

घ. यहां मृतक प्रतिवादी संख्या 1 अर्थात् श्री ए.कृष्णैया ने खुद को मूल वाद संख्या 33/1971 में प्रतिवादी संख्या 14 के रूप में शामिल किया था और दावा किया था कि उसने मूल वाद में क्रमशः प्रतिवादी संख्या 3 से 13 तक वाद की संपत्ति खरीदी थी मूल वाद क्रमांक 33/1971 में। सिविल कोर्ट ने मृतक के आचरण पर स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया था कि प्रतिवादी संख्या 1 वास्तविक नहीं लगता था और उसके पक्ष में बिक्री *लिस पेंडेंस* के सिद्धांत से प्रभावित हुई थी और मृतक प्रतिवादी संख्या 1 वास्तविक क्रेता नहीं लगता था और मुकदमे की संपत्ति के संबंध में किसी भी राहत का हकदार नहीं था।

ड. इसके बाद कार्रवाई के उसी कारण पर, मृतक प्रतिवादी संख्या 1 ने मूल वाद दायर साँझीया 104/1972 दायर किया अपीलकर्ताओं के खिलाफ समान राहत की मांग के लिए। उक्त मुकदमा दिनांक 08.12.1975 के निर्णय और आदेश के तहत योग्यता के आधार पर खारिज कर दिया गया।

च. दो दौर की कार्यवाही में असफल होने और मूल वाद संख्या 33/1971 और 104/1972 में पारित आदेशों को चुनौती न देने के बावजूद, मृतक प्रतिवादी ने कब्जे और अन्य राहत के लिए मूल वाद संख्या 603/1977 के माध्यम से एक और मुकदमा दायर किया। सिविल न्यायाधीश, बंगलोर सिटी की अदालत के समक्ष। उक्त मुकदमे को अंततः मूल वाद संख्या 1833/1980 के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया।

छ. मूल वाद संख्या 1833/1980 को पहली बार वर्ष 1983 में कानून द्वारा अपेक्षित कार्य को करने में विफल रहने के कारण खारिज कर दिया गया था। उसी के बदले में, प्रतिवादियों

ने विविध याचिका संख्या 1063/1984 दायर किया था और उक्त मुकदमे को बहाल करने की मांग की गई थी, जिसे वर्ष 1984 में अनुमति दी गई थी। इसके बाद, मूल वाद संख्या 1833/1980 के प्रतिवादी संख्या 4 अर्थात् श्री. नागराजा का निधन 04.12.1999 को हो गया। प्रतिवादियों को इसके बारे में पता चलने और क्रमशः 06.03.2000, 18.07.2000 और 22.08.2000 को पर्याप्त अवसर दिए जाने के बाद, प्रतिवादी संख्या 4 के कानूनी उत्तराधिकारियों को रिकॉर्ड पर लाने में विफल रहे, जिसके परिणामस्वरूप, मूल वाद संख्या 1833/1980 को दिनांक 22.08.2000 के आदेश के तहत निरस्त मानकर खारिज कर दिया गया।

ज. प्रतिवादियों यहाँ वादीगणों ने दिनांक 06.03.2006 को वापसी आवेदनके लिए अपने आवेदन में कहा कि मृतक प्रतिवादी संख्या 1 की पत्नी अर्थात् श्रीमती जयलक्ष्मी जी, जो प्रतिवादियों/वादियों में से एक हैं, कुछ बीमारी से पीड़ित थीं और उन्हें 09.02.2000 को अस्पताल में भर्ती कराया गया था। उन्हें 27.09.2003 को एंजियोप्लास्टी से भी गुजरना पड़ा और प्रतिवादियों को दिनांक 22.08.2000 का प्रमाणित आदेश दिनांक 26.08.2005 को प्राप्त हुआ। हालाँकि, इसके बाद, प्रतिवादियों ने क्रमशः आदेश 22 नियम 4, आदेश 32 नियम 1 और 2 और आदेश 22 नियम 9 के तहत मूल वाद संख्या 1833/1980 में विचारण के लिए न्यायालय के समक्ष आवेदन दायर किया, वाद को रद्द करने और कानूनी उत्तराधिकारियों को रिकॉर्ड पर लाने की मांग की गई है। हालाँकि, इसे आदेश दिनांक 16.11.2005 के माध्यम से खारिज कर दिया गया और प्रतिवादियों को वापस बुलाने के लिए आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई।

झ. उपरोक्त के बावजूद, प्रतिवादियों द्वारा दिनांक 16.11.2005 के आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष रिट पिटिशन संख्या 26660/2005 में चुनौती डी गई, जिसे भी खारिज कर दिया गया।

त्र. इसके बाद ही दिनांक 06.03.2006 को प्रतिवादियों ने विविध वाद संख्या 223/2006 में वापसी आवेदन के लिए एक आवेदन दायर किया। विचारण न्यायालय ने दिनांक 05.08.2014 के एक विस्तृत आदेश के तहत विविध को खारिज कर दिया। वाद संख्या 223/2006 निम्नानुसार है:

क) कि मृत प्रतिवादी संख्या के अधिकारों का निर्णय मूल वाद संख्या 33/1971 में ही विशिष्ट प्रदर्शन के मुकदमे में बहुत पहले ही कर लिया गया था। यह माना गया था कि मृतक प्रतिवादी संख्या 1 एक वास्तविक क्रेता नहीं था और मूल वाद संख्या 104/1972 एक समान मुकदमा ही था जो इसी कारण से उत्पन्न हुआ था, उसे भी गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया था।

ख) कि सभी प्रतिवादी शिक्षित हैं और प्रतिवादियों को मूल वाद संख्या 1833/1980 में प्रमाणित प्रतियां प्रारंभिक समय में प्राप्त करने में कोई बाधा नहीं थी।

ग) कि प्रतिवादियों ने वर्ष 2006 तक आवेदन दाखिल न करने के लिए कोई पर्याप्त कारण बताने में विफल रहे और इसके अलावा, विचारण न्यायालय ने कहा कि प्रतिवादियों द्वारा दिखाया गया कारण भी संदिग्ध प्रतीत होता है। इसके अलावा, यह माना गया कि वापस बुलाने के लिए आवेदन दाखिल करने में 6 साल की अत्यधिक देरी हुई और दिखाया गया कारण अपर्याप्त था।

घ) कि प्रतिवादियों ने दिनांक 26.08.2005 को प्रमाणित प्रतियां प्राप्त करने के बावजूद, केवल विविध संख्या 223/2006 दायर किया था। दिनांक 03.06.2006 को और प्रतिवादी याचिका दायर करने में अपनी देरी को स्पष्ट करने में विफल रहे।

ड) यह कि वर्तमान मुकदमे और मूल वाद के मुकदमे के मामले के रूप में यह मुकदमा स्वयं ही पुनर्न्यायिक दायरे में आ गया है। संख्या 33/1971 एक ही थी जिसमें विशिष्ट निष्कर्ष थे कि मृत प्रतिवादी संख्या 1 एक वास्तविक क्रेता नहीं था और किसी भी राहत का हकदार नहीं था। अदालत ने यह भी देखा कि वापसी आवेदन के लिए वर्तमान आवेदन सीमा से बाधित था और इसके अलावा, मूल वाद में मुकदमा संख्या 104/1972 को भी गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया था। यह कि प्रतिवादियों ने साफ हार्थों से अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाया और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया।

3. उपरोक्त से व्यथित होकर, प्रतिवादियों ने दिनांक 05.08.2014 के आदेश को रिट याचिका संख्या 7220/2014 में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी, जिसमें उच्च न्यायालय

ने रिट याचिका की अनुमति दी, जिससे लगभग 2200 दिनों की देरी को माफ कर दिया गया।

4. ऊपर उल्लिखित ऐसी परिस्थितियों में, अपीलकर्ता वर्तमान अपील के साथ इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हैं।

5. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आनंद संजय एम. नुली ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने वापस आवेदन के लिए दायर आवेदन को खारिज करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा बताए गए कारणों में से किसी भी कारण का उल्लेख किए बिना लगभग 2200 दिनों की देरी को माफ कर दिया।

6. उन्होंने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश से यह कहा जा सकता है कि वह उस मुकदमे को पुनर्जीवित करने के लिए आगे बढ़ा है जो वर्ष 1977 में शुरू किया गया था, यानी, एक मुकदमा जो लगभग 48 साल पहले शुरू किया गया था और अभी भी प्रमुख साक्ष्य के चरण में है।

7. उन्होंने कहा कि वापसी के लिए आवेदन दाखिल करने में ही छह साल की देरी हुई है। उन्होंने बताया कि यह दूसरा उदाहरण है जब प्रतिवादियों की ओर से लापरवाही और संवेदनहीन रवैये के कारण मुकदमा खारिज कर दिया गया।

8. ऊपर उल्लिखित ऐसी परिस्थितियों में, उन्होंने प्रार्थना की कि उनकी अपील में योग्यता होने के कारण, इसकी अनुमति दी जाए और उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाए।

9. दूसरी ओर, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजेश महाले ने कहा कि उच्च न्यायालय द्वारा विवादित आदेश पारित करने में कानून की किसी भी त्रुटि के बारे में बात न करते हुए कोई त्रुटि नहीं की गई है। उनका कहना था कि उच्च न्यायालय ने जो कुछ किया है वह पक्षकारों के बीच पर्याप्त न्याय करने की दृष्टि से देरी को माफ करना है।

10. ऊपर उल्लिखित ऐसी परिस्थितियों में, उन्होंने प्रार्थना की कि इस अपील में कोई योग्यता नहीं है, इसे खारिज कर दिया जाए।

11. पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों को पढ़ने के बाद, एकमात्र प्रश्न जो हमारे विचार के लिए है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित करने में कोई त्रुटि की है।

12. हम मामले की निम्नलिखित स्पष्ट विशेषताओं पर ध्यान देते हैं:

(i) मूल मुकदमा वर्ष 1977 का है। उक्त मुकदमे को 1980 के मूल मुकदमा संख्या 1833 के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया, 48 साल हो गए हैं जब यह मुकदमा साक्ष्य दर्ज करने के लिए लंबित है।

(ii) 1980 का मूल मुकदमा संख्या 1833 वर्ष 1983 में के कानून द्वारा अपेक्षित कार्य को करने में विफल रहने के कारण खारिज कर दिया गया था। इसे वर्ष 1984 में बहाल किया गया था।

(iii) वाद संख्या 1833/1980 के मूल प्रतिवादी संख्या 4, अर्थात् नागराजा का दिनांक 4.12.1999 को निधन हो गया।

(iv) यहां प्रतिवादियों को प्रतिवादी संख्या 4 के कानूनी उत्तराधिकारियों को रिकॉर्ड पर लाने के लिए क्रमशः 6.03.2000, 18.7.2000 और 22.8.2000 को अवसर दिए गए थे। ऐसा करने में विफल रहने पर अंततः मुकदमा निरस्त कर दिया गया।

(v) मृतक प्रतिवादी संख्या 1 के अधिकारों का निर्णय विशिष्ट निष्पादन के लिए दायर मुकदमे यानी 1971 के मूल मुकदमा संख्या 33 में पहले ही कर दिया गया था।

(vi) दिनांक 26.8.2005 को प्रमाणित प्रतियां प्राप्त करने वाले प्रतिवादियों ने विविध वाद संख्या 23/2006 को प्राथमिकता दिनांक 06.03.2006 को।

(vii) निर्विवादित रूप से, वापसी के लिए के लिए आवेदन दाखिल करने में ही 6 साल (लगभग 2200 दिन) की देरी हुई है।

13. हम यह समझने में असमर्थ हैं कि उच्च न्यायालय ने उपरोक्त सभी पहलुओं की अनदेखी क्यों की। उच्च न्यायालय के पास इस सब को नज़रअंदाज करने का अच्छा कारण क्या था? सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार जिला न्यायपालिका के साथ-साथ उच्च न्यायालयों को याद दिलाया है कि "उदार दृष्टिकोण", "न्याय उन्मुख दृष्टिकोण", "पर्याप्त न्याय" जैसी अवधारणाओं का उपयोग परिसीमा के महत्वपूर्ण कानून को विफल करने या खारिज करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

14. हम यह देखने के लिए बाध्य हैं कि उच्च न्यायालय ने न्यायिक विवेक और प्रतिबंधों की पूर्ण अनुपस्थिति प्रदर्शित की है, जिसे एक न्यायाधीश से पक्षकारों के बीच मुकदमे का फैसला करते समय बनाए रखने की उम्मीद की जाती है।

15. परिसीमा के नियम पक्षकारों के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं। उनका उद्देश्य यह देखना है कि पक्षकारों को टाल-मटोल की रणनीति का सहारा न लें बल्कि तुरंत इसका समाधान तलाशें।

16. देरी की अवधि निश्चित रूप से एक प्रासंगिक मामला है जिस पर अदालत को देरी पर विचार करते समय विचार करना चाहिए या नहीं। यहां प्रतिवादियों के दृष्टिकोण की प्रकृति से, ऐसा प्रतीत होता है कि वे कार्यवाही शुरू करने के उद्देश्य से अपनी स्वयं की सीमा अवधि तय करना चाहते हैं जिसके लिए कानून ने सीमा की अवधि निर्धारित की है। एक बार जब यह माना जाता है कि एक पक्ष ने लंबे समय तक अपनी निष्क्रियता के कारण मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार करने का अधिकार खो दिया है, तो इसे गैर-जानबूझकर देरी नहीं माना जा सकता है और मामले की ऐसी परिस्थितियों में, उसे यह दलील देने के लिए नहीं सुना जा सकता है कि तकनीकी विचारों के मुकाबले ठोस न्याय को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। देरी माफ़ करने की याचिका पर विचार करते समय, अदालत को मुख्य मामले के गुण-दोष से शुरुआत नहीं करनी चाहिए। अदालत का कर्तव्य है कि वह पहले माफी मांगने वाले पक्ष द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण की प्रामाणिकता का पता लगाए। यह केवल तभी होता है जब वादी और दूसरे पक्ष के विरोध द्वारा निर्दिष्ट पर्याप्त कारण समान रूप से संतुलित

होता है कि अदालत देरी को माफ करने के उद्देश्य से मामले की योग्यता में सहायता कर सकती है।

17. हमारा विचार है कि सीमा का प्रश्न केवल एक तकनीकी विचार नहीं है। परिसीमा के नियम सुदृढ़ सार्वजनिक नीति के सिद्धांतों और समता के सिद्धांतों पर आधारित हैं। किसी भी अदालत को किसी वादी के सिर पर 'डेमोकल्स की तलवार' को अनिश्चित काल तक लटकाए नहीं रखना चाहिए।

18. उपरोक्त सभी कारणों से यह अपील सफल होती है और इसे स्वीकार किया जाता है।

19. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है और विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 05.08.2014 को विविध वाद संख्या 223/2006 में पारित आदेश को इसके द्वारा बहाल किया जाता है।

मामले का परिणाम: अपील की अनुमति।

शीर्ष टिप्पणियाँ विभूति भूषण बोस द्वारा तैयार की गईं।

यह अनुवाद पैनल अनुवादक (मदन मोहन प्रिय) द्वारा किया गया है।